प्रथम अध्याय

संस्कृत–भाषा

संस्कृत संसार की सभी ज्ञात भाषाओं में प्राचीनतम है। इस भाषा में प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की बहुत बड़ी सम्पत्ति निहित है। इस भाषा का ज्ञात इतिहास प्रायः 4000 वर्षों का है क्योंकि वैदिक युग से लेकर आधुनिक युग तक संस्कृत में रचनाएँ निरन्तर होती रही हैं। बहुत दिनों तक इस भाषा का साहित्य मौखिक परम्परा में ही जीवित रहा। इस परम्परा की पर्याप्त रचनाएँ आज अक्षरशः सुरक्षित हैं। तथापि काल के विशाल मुख–विवर में संस्कृत की बहुत बड़ी साहित्य–सम्पदा नष्ट भी हो गई है। फिर भी, जो कुछ सुरक्षित है वही भारतवर्ष के लिए गौरव का विषय है।

संस्कृत की स्थिरता तथा व्यापकता देखकर प्राचीनकाल में ही इसे श्रद्धावश लोगों ने 'सुरभारती', 'अमरभाषा' या ' देवभाषा' कहा था। इसमें साहित्य की धारा कभी लुप्त नहीं हुई, निरन्तर चलती रही। संस्कृत भाषा में वैज्ञानिक, दार्शनिक तथा साहित्यिक ग्रन्थों का प्राचुर्य है। किसी भी प्राचीन भाषा में संस्कृत साहित्य के समान वैविध्य नहीं मिलता। बहुत दिनों तक यह भाषा जन–सामान्य में प्रचलित थी। उसके बाद इसकी परम्परा केवल साहित्यिक रूप में सुरक्षित रही। आज भी यह

भाषा शिष्टजनों के बीच प्रचलित है।

पारिवारिक दृष्टि से संस्कृत भारत–यूरोपीय भाषा–परिवार की भाषा मानी गई है। इसी परिवार में ग्रीक, लैटिन, जर्मन, अंग्रेजी, रूसी, फ्रांसीसी, ईरानी (फारसी) आदि भाषाएँ निहित हैं। संस्कृत के हजारों शब्द (सुबन्त तथा तिङन्त) इन भाषाओं में प्रायः उन्हीं अर्थों में अल्प रूप–परिवर्त्तन के साथ प्राप्त होते हैं। संस्कृत के 'अस्ति' शब्द को ग्रीक में 'एस्ति', लैटिन में 'एस्त'(est) , फारसी 'अस्त' , अँग्रेजी 'इज' (is) के रूप में देख सकते हैं। ईरानी भाषा तो संस्कृत से इतनी जुडी हुई है कि उपर्युक्त भाषा–परिवार में एक शाखा के रूप में भारत–ईरानी को संयुक्त रूप से रखा गया है। 'ईरान' शब्द भी संस्कृत के 'आर्याणाम्' (अपभ्रंश–अइरियानम्) से विकसित हुआ है। इस प्रकार संस्कृत को संसार की मुख्य भाषाओं के अध्ययन के लिए बहुत महत्वपूर्ण माना गया है।

संस्कृत भाषा अपनी शैली के कारण दो रूपों में मिलती है– ***वैदिक*** तथा ***लौकिक***। वैदिक संस्कृत (2000 ई० पू० से 800 ई० पू०) के चार चरण साहित्यिक विकास की दृष्टि से मिलते हैं – संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद्। उपनिषदों में संक्रमण–काल की भाषा मिलती है। उनके बाद लौकिक संस्कृत की धारा चल पडती है। समस्त वेदाङ्ग साहित्य इसी लौकिक संस्कृत में लिखा गया।

वस्तुतः लौकिक संस्कृत में अभिव्यक्ति का अभिनव रूप रामायण और महाभारत इन दो आर्ष ग्रन्थों से आरम्भ हुआ। इन ग्रन्थों में न केवल भाषा का परिष्कार है अपितु वैदिक आर्ष प्रयोग भी यत्र–तत्र प्राप्त होते हैं। इन दोनों आर्ष ग्रन्थों के बाद लौकिक संस्कृत की साहित्यिक सम्पदा का चतुर्दिक् विस्फोट हुआ, जिसकी दृढ आधारशिला वेदाङ्ग ग्रन्थों ने निर्मित कर दी थी। विभिन्न शास्त्रों का चिन्तन, वाल्मीकि द्वारा प्रदर्शित अभिनव काव्य मार्ग[1] एवं जीवनोपयोगी विविध विषयों का प्रस्फुटन लौकिक संस्कृत की अमूल्य सम्पदा है। इसीलिए संस्कृत–भाषा में निहित साहित्य की व्यापकता किसी भी व्यक्ति के लिए आश्चर्यकर है।

वैदिक और लौकिक संस्कृत में अन्तर

वैदिक संस्कृत में संगीतात्मक उच्चारण होने के कारण तीन स्वरों का प्रयोग था – उदात्त, अनुदात्त और स्वरित। लौकिक संस्कृत में ये समाप्त हो गए। रूपों की दृष्टि से वैदिक संस्कृत में अनेक रूप थे। लौकिक संस्कृत में उन्हें सीमित कर दिया गया जैसे – अकारान्त शब्दों के तृतीया बहुवचन में दो रूप वैदिक भाषा में थे – देवेभिः तथा देवैः। संस्कृत में केवल द्वितीय रूप शेष रहा। इसी प्रकार नपुंसक लिंग के प्रथमा–द्वितीया बहुवचन में वैदिक भाषा में दो रूप होते थे जैसे –विश्वानि , विश्वा। लौकिक

---

1. भोज – ***रामायणचम्पू*** – मधुमयभणितीनां मार्गदर्शी महर्षिः।

संस्कृत में केवल प्रथम रूप ही शेष रहा। वैदिक भाषा में अनेक जटिलताओं से भरा हुआ लेट् लकार था जिसका संस्कृत में लोप हो गया। इसका कार्य विधिलिङ् लकार से चलने लगा।

वैदिक संस्कृत में रूपों की तो अधिकता थी किन्तु वाक्य अत्यन्त सरल होते थे। शब्द–सम्पदा भी बहुत सीमित थी। लौकिक संस्कृत में भले ही रूप परिमित हो गए किन्तु शब्द–सम्पदा भारत की अनेक भाषाओं से शब्द उधार लेने के कारण बहुत बढ़ गई। वाक्य–रचना भी अपेक्षाकृत जटिल हो गई, यद्यपि आरम्भ में 'पञ्चतन्त्र' आदि ग्रन्थों में वह सरलता की ओर ही उन्मुख है। साहित्य शास्त्र के विकास के साथ लौकिक संस्कृत भाषा में अभिव्यक्तियों का जो आडम्बर प्रचलित हुआ वह परवर्ती गद्य–काव्य में अपने शिखर पर पहुँच गया। सातवीं शताब्दी ई0 में दण्डी ने समास के प्राचुर्य को गद्य का जीवन कहा (ओजः समासभूयस्त्वमेतद्गद्यस्य जीवितम्) ।

लौकिक संस्कृत में दार्शनिक चिन्तन का ऐसा चतुरस्र विकास हुआ कि न केवल वैचारिक स्तर पर अपितु अभिव्यक्ति के स्तर पर भी सैकड़ों पारिभाषिक शब्दों तथा अभिव्यक्ति के नए–नए प्रकारों का उद्गम हुआ। सामान्य संस्कृत समझने वाले उस भाषा को हृदयंगम नहीं कर सकते।

संस्कृत में अभिव्यक्ति के प्रति विद्वानों के आकर्षण ने इसे जन –सामान्य से दूर कर दिया और प्राकृत अपभ्रंश जैसी भाषाएँ संस्कृत से

निकल कर जन–सामान्य की जिह्वा पर चढ़ गईं। फिर भी उच्च–शिक्षा तथा परिनिष्ठित जनों की भाषा के रूप में संस्कृत सुरक्षित रह गई जो अद्यावधि वर्त्तमान है।

संस्कृत का उद्‌भव तथा विकास

' संस्कृत ' शब्द से यह ज्ञात होता है कि यह संस्कार या परिष्कार से सम्पन्न भाषा है। वैदिक युग में जब आर्यजन सप्तसिन्धु–प्रदेश में रहते थे तो वे संस्कृत के विभिन्न रूपों का प्रयोग करते थे। उन दिनों 'संस्कृत' शब्द नहीं आया था, प्रत्युत बोल–चाल की भाषा के लिए एक दार्शनिक शब्द ' वाक् ' का प्रयोग होता था जैसे – ' तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति', 'वाचा विरूपनित्यया ' इत्यादि ।

वैदिक भाषा अपने विभिन्न रूपों में सप्तसिन्धु प्रदेश के विविध क्षेत्रों में प्रचलित थी। किसी भी वैदिक संहिता के विभिन्न खण्ड इस भाषा की अनेकरूपता का परिचय देते हैं। वैदिक भाषा के समापन–काल में अनेक वैयाकरण इस भाषा के अतीत तथा वर्त्तमान रूपों का निरीक्षण करने में लगे। इन वैयाकरणों में आचार्य पाणिनि अग्रगण्य हैं । उनके समक्ष भी संस्कृत भाषा के अनेक रूप वर्त्तमान थे, उनमें सर्वाधिक परिनिष्ठित रूप को शिष्ट प्रयोग मानकर पाणिनि ने उसका सर्वेक्षण किया तथा प्रायः चार हजार सूत्रों में अपने सर्वेक्षण को अभिव्यक्त किया। इस सर्वेक्षण में वैदिक भाषा के

रूपों के साथ लौकिक (वर्त्तमान) संस्कृत की तुलना भी आचार्य पाणिनि ने प्रस्तुत की । संस्कृत भाषा के विकास में पाणिनि का अनन्य योगदान है।

पाणिनि ने एक ओर संस्कृत भाषा के अनियन्त्रित परिवर्त्तनों को व्यवस्थित किया तो दूसरी ओर किसी भी भाषा के व्याकरण के निरीक्षण के लिए मार्ग–दर्शन भी किया। जन–सामान्य में संस्कृत के अन्य रूप प्रचलित थे जो यदा–कदा इतने केन्द्रापसारी (Centrifugal) बन जाते थे कि प्राकृत जैसी भाषा के विकसित होने के लिए उत्तरदायी हो गए। वस्तुतः संस्कृत प्राकृत में व्याकरणिक अन्तर अत्यल्प है। किन्तु ध्वनिगत अन्तर उच्चारण के सौकर्य के लिए विकसित है।

संस्कृत के उद्‌भव को सम्यक् परिप्रेक्ष्य में देखने के लिए यहाँ भारतीय आर्य भाषाओं के विकास का संक्षिप्त परिचय देना आवश्यक है। भारतीय आर्य भाषाओं को मुख्यतः तीन चरणों में विकसित होते हुए माना जाता है – (1) प्राचीन भारतीय आर्यभाषा (2000 ई0 पू0–500 ई0 पू0): (2) मध्यकालीन भारतीय आर्यभाषा (500 ई0 पू0–1000 ई0) तथा (3) नव्य भारतीय आर्य भाषा (1000 ई0 से आज तक)। प्राचीन भारतीय आर्य भाषा काल में वैदिक और लौकिक संस्कृत क्रमशः विकसित हुई। भाषा– शास्त्रियों का कहना है कि वैदिक आर्यभाषा भी भारत–यूरोपीय भाषा– परिवार की एक उपशाखा के रूप में उत्पन्न हुई थी। उसी वैदिक भाषा से लौकिक

संस्कृत का विकास हुआ। 800 ई0 पू0 में लौकिक संस्कृत वैदिक के स्थान पर आ गई।

जब हम मध्य भारतीय आर्यभाषा काल में आते हैं तो यहाँ क्रमशः तीन चरण मिलते हैं – (1) प्राचीन–प्राकृत एवं पालि (500 ई0 पू0 से ईस्वी सन् के आरम्भ तक); (2) साहित्यिक प्राकृत (ईस्वी सन् के आरम्भ से 500 ई0 तक) तथा (3) अपभ्रंश (500 ई0 – 1000 ई0 तक) । ये काल स्थूल हैं। इन सभी कालों में जन–सामान्य में उपर्युक्त भाषाएँ चलती रहीं किन्तु संस्कृत भाषा के लौकिक रूप का भी विकास विभिन्न दिशाओं में साहित्यिक रचनाओं तथा शिक्षा की दृष्टि से होता रहा। अभिव्यक्ति सूक्ष्म से सूक्ष्मतर होती गई। साहित्यिक भाषा में सौन्दर्य का विकास होता रहा। साहित्यिक सौन्दर्य की समीक्षाएँ भी होती रहीं। वस्तुतः संस्कृत का साहित्यिक विकास जन–सामान्य से इस भाषा के पृथक् होने पर ही बहुत अधिक हुआ। अभिलेखों में, शास्त्रीय ग्रन्थों में, काव्यों में तथा नाटकों में संस्कृत का व्यापक प्रयोग इन डेढ़ हजार वर्षों में हुआ।

भारतीय आर्यभाषा का नव्यकाल 1000 ई0 से आरम्भ होता है। इस काल में भी संस्कृत भाषा के समानान्तर यद्यपि विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएँ प्रचलित थीं तथापि शिक्षित समुदाय में व्यापक रूप से संस्कृत का पठन–पाठन–लेखन चलता रहा। बड़े–बड़े संस्कृत विद्वान् इस कालावधि में

उत्पन्न हुए जिन्होंने संस्कृत की अभिव्यक्ति–क्षमता बहुत सूक्ष्म किन्तु क्लिष्ट भी कर दी। यह ज्ञातव्य है कि नव्य न्याय की भाषा इसी काल में विकसित हुई जो पंडितों के लिए भी दुरूह है।

इस प्रकार संस्कृत भाषा का निरन्तर विकास होता गया, चाहे लौकिक रूप से जन–सामान्य में कोई भी भाषा चल रही हो।

क्या संस्कृत बोल–चाल की भाषा थी ?

प्रायः कुछ विरोधी लोग संस्कृत को मृत भाषा कहते हैं। किन्तु यह द्वेषपूर्ण मान्यता है। वस्तुतः यह भाषा कभी भी जनता के द्वारा तिरस्कृत नहीं हुई। भले ही इसमें लोग अपनी अभिव्यक्ति नहीं कर पाते हों किन्तु इसके प्रति सम्मान का भाव तो अवश्य रखते रहे। प्राचीन भारत में इसके प्रयोग के अनेक प्रमाण मिलते हैं जैसे यास्क और पाणिनि ने इसे केवल 'भाषा' कहा है। दोनों विभिन्न क्षेत्रों में इसके पृथक्–पृथक् प्रयोगों की सूचना देते हैं। वाल्मीकि ने इसके दो रूपों का वर्णन किया है – शिष्टजनों में प्रचलित (द्विजातिरिव संस्कृताम् ') तथा सामान्य लोगों के द्वारा प्रयुक्त।

बौद्धकवि अश्वघोष ने अपने धर्म की प्रचलित भाषा को छोड़कर संस्कृत का आश्रय लिया क्योंकि इसके द्वारा धर्म के सिद्धान्तों का व्यापक प्रचार होने की सम्भावना थी। महर्षि चरक ने वैद्यों के बीच वार्तालाप में संस्कृत के प्रयोग की ही सूचना दी है। द्वितीय शताब्दी ईस्वी से 19वीं श०

तक प्रायः सभी अभिलेख संस्कृत में ही लिखाए गए। ये अभिलेख जनता के बोध के लिए ही प्रस्तुत हुए थे। कश्मीरी कवि बिल्हण ने (11वीं श० ई०) कहा है कि कश्मीरी स्त्रियाँ तक संस्कृत , प्राकृत तथा देश भाषा–इन तीनों का प्रयोग करती हैं। भारत के पूर्वी उपनिवेशों में इस्लाम के आगमन के पूर्व तक सारे अभिलेख संस्कृत में ही लिखे गए थे। विदेशी विद्वानों ने भी संस्कृत के वर्त्तमान युग में इसके व्यापक प्रयोग की प्रशंसा की है।

वर्त्तमान काल में संस्कृत–सम्भाषण के लिए शिविरों का आयोजन किया जाता है जिससे संस्कृत का दूर–दूर तक प्रयोग होता है। संस्कृत में निहित ज्ञान की शिक्षा के लिए प्रायः एक दर्जन से अधिक संस्कृत विश्वविद्यालय तथा संस्थाएँ काम कर रही हैं। मुख्य सांस्कृतिक उत्सवों में संस्कृत के नाटकों का अभिनय होता है जिसका आस्वादन बहुत लोग करते हैं। संस्कृत भाषा में शंकराचार्य तथा भगवद्गीता पर चलचित्र भी निर्मित हुए हैं। सहस्राधिक संस्कृत रचनाएँ सभी विधाओं में केवल 20 वीं शताब्दी में प्रकाशित हुई हैं। संस्कृत भाषा में प्रतिवर्ष नई रचनाओं का चयन साहित्य अकादमी, संस्कृत–अकादमी इत्यादि संस्थाओं के द्वारा पुरस्कार प्रदान करने के लिए किया जाता है।

ऐसे बहुव्यापक प्रयोग से सम्पन्न संस्कृत भाषा को मृत कहना कहाँ तक संगत है, विचारणीय है। एक आधुनिक संस्कृत कवि ने इस भाषा की

जीवनी शक्ति पर लिखा है – न मृता म्रियते न मरिष्यति नो। संस्कृत भाषा केवल नाम से ही नहीं, अपितु अर्थ से भी अमर भाषा है।

अभ्यास

1. संस्कृत का क्रमिक विकास कितने रूपों में हुआ ? स्पष्ट करें।
2. वैदिक संस्कृत के विकास के चरणों का निरूपण करें।
3. वैदिक संस्कृत और लौकिक संस्कृत के संधि काल में हुए पाणिनि की विशेषताएँ बताएँ।
4. भारतीय आर्य–भाषाओं के द्वितीय चरण में कौन–सी भाषाएँ आयीं? उस समय संस्कृत की क्या स्थिति थीं?
5. संस्कृत में अभिव्यक्ति की क्लिष्टता कैसे आई?
6. वैदिक और लौकिक संस्कृत का अन्तर संक्षेप में समझाएँ।
7. क्या संस्कृत बोल–चाल की भाषा थी ? स्पष्ट करें।
8. संस्कृत की आधुनिक स्थिति का परिचय दें।
9. टिप्पणी लिखें –

   (i) वैदिक संस्कृत

   (ii) पाणिनि

   (iii) मध्य–भारतीय आर्यभाषा

   (iv) संस्कृत का जनसामान्य में प्रयोग

   (v) संस्कृत सम्भाषण